पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
देवलाली, ता. २५-४-१९८७
श्री समयसार, गाथा २९७, प्रवचन नंबर २ Version 1

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है। उसका मोक्ष नाम का अधिकार है। गाथा २९७ चलती है। उसमें मोक्ष का मार्ग मोक्ष का कारण है। और मोक्ष के मार्ग का कारण भेदविज्ञान है। भेदविज्ञान क्या? मोक्ष का मार्ग क्या? और मोक्ष क्या? मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनंद की दशा। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनंद ऐसी पूर्ण दशा प्रगट होती है - अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्य, ऐसी परिपूर्ण अवस्था का नाम मोक्ष दशा है। और उस मोक्ष का कारण मोक्षमार्ग है। मोक्ष है, परिपूर्ण दशा है आनंद की और उसका कारण मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग यानि कि वीतरागमार्ग। और ये वीतराग भाव प्रगट होने का कारण भेदविज्ञान है।

भेदविज्ञान अर्थात् जो वर्तमान पुण्य और पाप की लगन का उत्थान होता है, ऐसी बहिर्मुख वृत्ति में क्षण में शुभ और क्षण में अशुभ, ऐसे जो विकृत भाव उत्पन्न होते हैं, उससे भिन्न चिदानंद आत्मा वह चेतनेवाला है लेकिन पुण्य-पाप को करनेवाला नहीं। अनादि-अनंत आत्मा का स्वरूप ही ऐसा है। एक समय मात्र भी आत्मा... जिसको आत्मा कहने में आता है ऐसा जो शुद्धात्मा, वो पुण्य और पाप के परिणाम को करनेवाला नहीं है।

आज तक जिस आत्मा ने पुण्य और पाप के परिणाम को किया नहीं, ऐसा जो शुद्धात्मा, उसका अवलंबन लेने पर मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है। पुण्य और पाप के परिणाम पर्याय में, अवस्था में मलिन भाव भले अनादि से हों, लेकिन उनका उत्पादक, उनका कर्ता आत्मा नहीं है। क्योंकि आत्मा में पुण्य और पाप के परिणाम को करने की आत्मा में कोई शक्ति नहीं है, कि जो उसकी रचना करे। ऐसा जो शुद्धात्मा- अकारक और अवेदक, अकर्ता और अभोक्ता, वो मात्र चेतनेवाला है। चेतनेवाला है लेकिन करनेवाला नहीं है।

ये पुण्य और पाप के परिणाम भले संयोग में हों लेकिन भगवान आत्मा उनका करनेवाला नहीं है। उनसे भिन्न आत्मा है। रागादि परिणाम से आत्मा, शुद्धात्मा, चेतनेवाला, देखनेवाला, जाननेवाला, ज्ञानमय आत्मा, रागमय ऐसे जड़भाव से भिन्न है। इसलिए जड़भाव को करनेवाला नहीं है। वह तो चेतनेवाला, जाननेवाला, देखनेवाला है। लेकिन अनादिकाल से भेदज्ञान का अभाव होने के कारण मानो ये रागादिभाव मेरे हैं और मैं उनका हूँ, ऐसे अनादिकाल से पुण्य और पाप का स्वामी बना बैठा है। परिणाम दूसरे के हैं, परिणाम जीव के नहीं हैं। जीव में ज्ञान होता है और उस ज्ञान से पुण्य और पाप भिन्न हैं। ये पुण्य-पाप ज्ञान में जानने में तो आते हैं मगर ज्ञान में आते नहीं।

ये पुण्य-पाप से भिन्न आत्मा, आचार्य भगवान कहते हैं कि इस राग से भिन्न करने का साधन प्रज्ञाछैनी है। प्रज्ञा अर्थात् अंतर्मुख ज्ञान कि जिस ज्ञान में ज्ञायक जानने में आये, अनुभव में आये, तब उस

राग की एकताबुद्धि तोड़कर अनुभव होता है, उसको प्रज्ञा कहने में आता है।

तो ये प्रज्ञा अर्थात् अंतर्मुख ज्ञान द्वारा, भेदज्ञान द्वारा, भेदज्ञान द्वारा अर्थात् अभेद के अनुभव द्वारा, भेदज्ञान अर्थात् अभेद का अनुभव। भेद का अनुभव नहीं। भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद सामान्य टंकोत्कीर्ण आत्मा है उसको अंतर में लेकर जाने, अनुभव करे, उसका नाम प्रज्ञाछैनी है। और उसके द्वारा मेरा आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न है- ऐसा भान होता है गृहस्थ अवस्था में। तब उसको अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव आता है।

अब उस प्रज्ञा द्वारा आत्मा और आस्रव को जुदा किया। बंध का लक्षण राग, राग अर्थात् आस्रव। आस्रव के दो भेद। पुण्यास्रव और पापास्रव, दो प्रकार होते हैं। उनसे भिन्न आत्मा को जुदा किया और जाना। श्रद्धा-ज्ञान में लिया कि मेरा आत्मा तो चेतनेवाला है। ये पुण्य-पाप का करनेवाला नहीं है। इसप्रकार प्रज्ञा द्वारा, ज्ञान द्वारा भेदज्ञान करके अभेद का अनुभव किया।

उसके बाद शिष्य प्रश्न करता है कि ऐसे भेदज्ञान द्वारा राग से भिन्न करके चिदानंद आत्मा का अनुभव किया। अब उस प्रज्ञा द्वारा आत्मा को ग्रहण किस तरह करना? प्रज्ञा से तो राग से भिन्न कर दिया। अब वह आत्मा जो लक्ष्य में आया, उसको प्रज्ञा द्वारा अर्थात् ज्ञान द्वारा अर्थात् उपयोग द्वारा किस तरह से ग्रहण करना अर्थात् किस तरह से जानना? श्रद्धा में लिया हुआ आत्मा, उसको अब किस तरह से मुझे जानना? श्रद्धा में आ गया है। लेकिन कृपा करके मुझे जानने की विधि बताओ। श्रद्धा तो प्रगट हो गई लेकिन अब उसको जानें किस तरह से? फिर-फिर अनुभवना किस तरह? ऐसा एक चारित्र का प्रश्न शिष्य को उत्पन्न हुआ है।

यह चारित्र दशा कैसे हो - उसकी बात चलती है। तब आचार्य भगवान ने शोर्ट में, संक्षिप्त में उत्तर दिया। कि जिस साधन के द्वारा तूने राग से आत्मा को जुदा किया उस ही साधन (द्वारा)- प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को ग्रहण करना। अब **प्रज्ञा के द्वारा** आत्मा को ग्रहण करना, **इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि**, ऐसा जानना, ज्ञान द्वारा ऐसा जानना, अनुभवना कि **जो चेतनेवाला है वह निश्चय से मैं हूँ**, जो जाननेवाला है वह मैं हूँ। अनादि-अनंत आत्मा जाननेवाला जाननेवाला देखनेवाला देखनेवाला ऐसा त्रैकालिक स्वभाव, जो चेतनेवाला आत्मा, जिसमें चैतन्य रहता है, उसमें राग नहीं, द्वेष नहीं, (काल्पनिक) सुख नहीं, दुःख नहीं, आठ कर्म नहीं, शरीर नहीं। जगत के कोई पदार्थ उसकी अस्ति में नहीं।

वह तो ज्ञान और आनंद से भरा हुआ आत्मा चेतनेवाला है। इसको ऐसे ग्रहण करना, ऐसे जानना कि मैं चेतनेवाला हूँ। जो चेतक है वो यह मैं हूँ। और शेष जो भाव, जो रागादि हैं, पाँच महाव्रत आदि के भाव, वें सब मेरे से भिन्न हैं। मेरा लक्षण और राग का लक्षण मिलता हुआ आता नहीं। वे अनमेल भाव हैं। मेरे द्रव्य, गुण, पर्याय में चेतना है और पाँच महाव्रत के जो परिणाम प्रगट होते हैं उनमें चेतना लक्षण का अभाव है। जिसमें चेतना लक्षण नहीं वो मेरे भाव नहीं। मेरे से बाह्य हैं। ऐसा भेदज्ञान करके अनुभव किया, आत्मा को दृष्टि में लिया। अब फिर से उस शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा को... प्रतीति में आया। अब शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा को किस तरह से अनुभवना? किस तरह से ध्येय का ध्यान करना? तेनुं ध्यान केवी रीते કરવું? उसका ध्यान किस तरह से करना? उसका आचार्य भगवान उत्तर देते हुए कहते हैं कि ज्ञान की

पर्याय द्वारा आत्मा जाना जा सकता नहीं। ज्ञान की पर्याय का जो भेद है कि श्रुतज्ञान द्वारा मैं आत्मा को जानता हूँ। तो कहते हैं कि श्रुतज्ञान का एक समय का भेद- पर्याय है। उसके द्वारा आत्मा को जानने पर, इतना भेद पड़ा। इसके द्वारा इसको जानना। ज्ञान की अवस्था द्वारा ज्ञायक को जानना। समझाने के लिए यह बात सच्ची है। कहने के लिए यह बात सच्ची है। कि राग द्वारा तो जाना जा सकता नहीं पर ज्ञान द्वारा आत्मा जाना जा सकता है। कहने के लिए तो यह बात सही है। पर इतना कथन आया उसमें भेद उत्पन्न हो गया। आहाहा!

ज्ञान द्वारा, उपयोग द्वारा आत्मा को जानना- इतना उसमें भेद पड़ने पर, भेद के लक्ष्य से जो विकल्प उत्पन्न होता है, उसमें आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होता नहीं। इसलिए ज्ञान द्वारा यह समझाने के लिए कहा था। अब तू उसको गौण कर डाल। यह गौण करके आत्मा द्वारा आत्मा जानने में आता है। आत्मा द्वारा, आत्मा से, आत्मा के लिए, आत्मा में, आत्मा के आधार से आत्मा जानने में आता है। इतना समझाया, इतना समझाया उसमें भी कारक का भेद पड़ता है। कर्ता भी आत्मा, करण आत्मा, कर्म आत्मा, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण आत्मा। पर्याय के षट्कारक से तो आत्मा अनुभव में आता नहीं। पर पर्याय परिणत जो आत्मा उसमें भी भेद पड़ता है कि आत्मा आत्मा को जानता है। आत्मा आत्मा को जानता है- उसमें भी आत्मा जानने में नहीं आता।

एकदम ऊँचे प्रकार की बात है। आहाहा! ये तो महाविदेह क्षेत्र में से आई हुई बात, कुन्दकुन्द भगवान ने झेली और हमारे लिए ये माल लाये। आहाहा! और हमारे लिए ये शास्त्र लिखे हैं। प्रभु! सुन! तू बाहर की क्रिया, पुण्य की क्रिया से धर्म मान रहा है कि पुण्य से धर्म होता है। ये तो बड़ा पाप है। पुण्य स्वयं पाप नहीं है। लेकिन पुण्य से धर्म मानना उसका नाम पाप है। पुण्य के परिणाम तो साधक को भी होते हैं, आते हैं। लेकिन पुण्य से धर्म (होता है ऐसा) साधक मानता नहीं। अज्ञानी जीव पुण्य के परिणाम से धर्म मानता है, यह तो बड़ा अज्ञान है। पुण्य के परिणाम, राग के परिणाम से तो आत्मा अनुमान में भी आता नहीं तो अनुभव की बात तो (कहीं दूर रही।) आहाहा! वह तो जड़भाव अचेतन है। वह तो स्वभाव का अंश भी नहीं है। वह तो पुद्गल का ही अंश है। कर्मकृत भाव है, भाई! जीवकृत (भाव नहीं है)। इसलिए उसकी बात तो दूर रहो।

पर जो उपयोग आत्मा का लक्षण है और आत्मा लक्ष्य है। शक्कर की मिठास है वो लक्षण कहलाता है और शक्कर को लक्ष्य कहा जाता है। लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है। लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है, कि मिठास वो शक्कर, कड़वा वो अफीम, खट्टा वो नींबू इत्यादि। ऐसा कहते हैं कि उपयोग लक्षण द्वारा आत्मा अनुमान में आता है, लेकिन अनुभव में आता नहीं। राग द्वारा तो अनुमान में भी आता नहीं लेकिन उपयोग लक्षण द्वारा यह आत्मा चेतनेवाला है, जाननेवाला है, देखनेवाला है ऐसा ख्याल में आ सकता है। ख्याल में ले सकते हैं। लेकिन वो अनुमान में आ सकता है। भेद द्वारा अभेद अनुमान में आता है। भेद द्वारा अभेद वस्तु, अभेद का भेद, अभेद का भेद होने से, भेद द्वारा अभेद अनुमान में आता है लेकिन जो अभेद का भेद नहीं, उसके द्वारा तो आत्मा अनुमान में भी आ सकता नहीं। वह तो सम्यक के सन्मुख भी नहीं है। किन्तु ज्ञान द्वारा, पर्याय द्वारा मैं द्रव्य को जानता हूँ, आहाहा!

ज्ञान की पर्याय वह आत्मा का परिणाम है। आत्मा के परिणाम द्वारा आत्मा को जानता हूँ। कहते हैं बापू! भेद पड़ा। आहाहा!

आत्मा और आत्मा के परिणाम- एक में दो प्रकार तूने किये। इस भेद से भी विकल्प की उत्पत्ति होती है लेकिन शुद्धात्मा की प्राप्ति होती नहीं। बाद में आगे चलकर आचार्य भगवान ऐसा कहते हैं कि आत्मा द्वारा आत्मा जानने में आता है। स्वयं स्वयं को जानता है। सेटिका की गाथा में आया है कि स्वयं स्वयं को जानता है, वह भी स्व-स्वामी संबंध का अंश है। उस व्यवहार से साध्य की सिद्धी होती नहीं। आत्मा आत्मा को जानता है। स्वयं स्वयं को जानता है। स्वयं पर को जानता है यह मान्यता तो अज्ञान में जाती है। वह तो ज्ञान में आता नहीं। लेकिन आत्मा आत्मा को जानता है, आत्मा द्वारा मैं आत्मा को जानता हूँ, आत्मा से आत्मा को जानता हूँ, आत्मा के लिए आत्मा को जानता हूँ, आत्मा में से आत्मा को जानता हूँ- ऐसे आत्मा एक होने पर भी उसके दो भाग किये, इसलिए उसे विकल्प का जाल खड़ा होता है, लेकिन अनुभव होता नहीं। इसलिए अब, वहाँ तक कल अपन आये थे। अब उससे आगे एक आखरी बात है। किसी को ऐसा लगे कि शीघ्रता से जल्दी कह दो, तो अब कुछ बाकी नहीं है। ये एक बाकी है। थोड़ा-सा एक बाकी है। ये जो नज़र में आ जाये तो यहीं बैठे-बैठे अनुभव हो। बाहर निकलने की जरूरत नहीं है। यह क्या है मर्म? यह अब आचार्य भगवान फरमाते हैं।

न चेतता हुआ चेतता हूँ, न चेतता हुआ चेतता हूँ। अर्थात् न जानता हुआ जानता हूँ। न देखता हुआ देखता हूँ। है तो सब देखने का और जानने का अंदर। बाहर की बात यहाँ कुछ है नहीं, यहाँ कर्म, राग को जानने की, देखने की बात तो है ही नहीं। लेकिन आत्मा को देखने के लिए भेद जितना पड़ता है, उसमें भी आत्मा का अनुभव होता नहीं, मोक्षमार्ग प्रगट होता नहीं। मोक्षमार्ग प्रगट हो तो मोक्ष हो। विकल्प की जाल वह तो बंधमार्ग है। दो प्रकार के, छह प्रकार के कारक के भेद पड़ते हैं उसमें अनुभव होता नहीं।

इस समयसार में कर्ता-कर्म अधिकार की ७३ नंबर की गाथा है। उसमें 'शुद्ध' के बोल में ऐसा लिया कि यह आत्मा एक है, शुद्ध है, ममत्वहीन और ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण (है)। कहते हैं कि यह आत्मा शुद्ध है इसलिए कि सर्व प्रकार के कारकों की प्रक्रिया से पार उतरी हुई निर्मल अनुभूतिमात्र स्वभाव होने से आत्मा शुद्ध है। आत्मा परपदार्थ को तो करता, भोगता नहीं। ऐसी तो प्रक्रिया आत्मा में है ही नहीं। फिर भी ऐसा माने कि मैं पर को करूँ, पर को सुखी-दुःखी करूँ, आहाहा! वह तो एकदम स्थूल अज्ञान है। ऐसा कर्तापना आत्मा में नहीं है। आत्मा में ऐसा कर्तापना नहीं है कि कर्म को बांधे और कर्म को भोगे, ऐसा कर्तापना नहीं है। आत्मा में ऐसा कर्तापना नहीं है कि पुण्य-पाप को करे। ऐसा कर्तापना आत्मा में नहीं है। आत्मा में ऐसा कर्तापना नहीं कि वीतरागभाव को करे। आहाहा! सूक्ष्म बात है। आहाहा! जबलपुरवाले आये थे ना? जबलपुरवाले नहीं भुसावलवाले। उन्होंने नहीं कहा था कि बहुत ही सूक्ष्म बात है यहाँ समझने जैसी।

यह भगवान आत्मा है, यह शुद्ध इसलिए है कि अकर्ता है, इसलिए शुद्ध है। अब, अकर्ता है इसलिए शुद्ध है- ये बताने के लिए ऐसा कहा कि सर्व प्रकार के कारकों.., निकालो ७३ नम्बर की गाथा।

हमारे सामने साक्षी है। शास्त्र का आधार। कर्ताबुद्धि छूटे बिना कहीं भव का अंत आये ऐसा नहीं है। ज्ञाता है, कर्ता नहीं है भाई! आत्मा को कर्ता मानना यह तो बड़ी भूल है। देखो! शुद्ध का बोल है। मैं शुद्ध हूँ। आत्मा शुद्ध होता नहीं। शुद्ध है। शुद्ध होता है वह परिणाम होता है। शुद्ध होता है वह परिणाम होता है।

वो शुद्ध होता है वो परिणाम में शुद्धता होती है। मोक्ष है वो परिणाम है। उस परिणाम में बंध था पूर्व काल में, उस बंध का अभाव होकर जीव का मोक्ष होता है। जीव का मोक्ष होता है अर्थात् जीव के परिणाम का मोक्ष होता है। जीव का मोक्ष होता है- वो शोर्ट वाक्य है, संक्षिप्त। समझे? जीव बंधा था, अब जीव का मोक्ष हो गया। ऐसे कथन में तो ऐसा आता है। मगर सचमुच तो जीव बंधा नहीं था। वो परिणाम में बंध था। वो परिणाम में मोक्ष हो गया तो कहा जाता है कि जीव का मोक्ष हो गया। सचमुच तो मोक्ष होता है परिणाम का।

भगवान आत्मा को बंध भी नहीं है और मोक्ष भी नहीं है। वह तो त्रिकाल मुक्त है। आहाहा! परमात्मा विराजमान अभी मुक्त है। मुक्त दशा नहीं है। बंध दशा में भी मुक्त रहता है। बंध दशा होने पर भी वह भगवान आत्मा मुक्त ही है। मिथ्यात्व की तीव्र अवस्था हो, गृहीत और अगृहीत दोनों भले, ऐसी अवस्था के काल में भी भगवान आत्मा तो शुद्ध है। वो देख ले तू। दिखाई देता है। ये परिणाम के मध्य में रहने पर भी वो आत्मा स्फटिकमणि जैसा शुद्ध है। आहाहा! उसको देख ले। परिणाम को मत देख। परिणाम को देखना बंद कर दे एक क्षणभर। परिणाम का जो भेद है न, ओहोहो! बंद कर दे उसकी दृष्टि। दृष्टि हटा दे वहाँ से। लक्ष हटा दे। और परिणाम के बीच में वो भगवान आत्मा विराजमान है, उसको लक्ष्य में ले ले। आहाहा! एक समय के लिए तो लक्ष्य में ले कि जाननेवाला जानने में आता है, और कुछ जानने में आता नहीं। आहाहा!

ऐसे आचार्यमहाराज फरमाते हैं कि मैं शुद्ध हूँ। उसका कारण देते हैं। शुद्ध का कारण क्या? कि आत्मा पर का कर्ता नहीं है इसलिए शुद्ध है। आत्मा शरीर का कर्ता नहीं है इसलिए शुद्ध है। आत्मा वाणी का कर्ता नहीं है इसलिए शुद्ध है। आत्मा आठ कर्म का कर्ता नहीं है इसलिए शुद्ध है। आत्मा पुण्य-पाप का कर्ता नहीं है इसलिए शुद्ध है। आत्मा संवर, निर्जरा, मोक्ष का कर्ता नहीं है इसलिए आत्मा शुद्ध रह गया। शुद्ध पर्याय का कर्ता नहीं है इसलिए आत्मा शुद्ध है।

(कोई कहे) कि शुद्ध पर्याय तो करना चाहिए न भैया! करना चाहिए कि होता है उसको जानना चाहिए? होने योग्य होता है उसका जाननहार है कि नहीं होता है उसको करना है? और होता है उसको करना है? नहीं होता है उसको कर सकते नहीं हैं। और स्वयं होता है, वो कर्तापने की अपेक्षा रखता नहीं। वो परिणाम तो हो गया। आहाहा! बहुत ऊँची गाथा है। आहाहा! आखरी दिन है। आहाहा! ये हरख जमण (प्रीतिभोज) है। ऊँची बात है। गुरुदेव कहते हैं कि हरखजमण (है)।

भगवान एक बार तेरी बात तो सुन! तेरी कथा भगवान कहते हैं। भगवान भगवान की कथा कहते हैं। भगवान होकर भगवान को बताते हैं। ऐसे (मात्र) शास्त्र पढ़कर ये आत्मा की बात नहीं करते। प्रत्यक्ष अनुभव करके (आत्मा की बात करते हैं।) मुनिराज आहाहा! निरंतर आनंद का भोजन करनेवाले, प्रचुर आनंद का भोजन करने वाले। जंगल में रहनेवाले। ये धर्मात्मा कहते हैं प्रभु! आत्मा तो ज्ञाता है न! कर्ता है

नहीं। कर्ता नहीं है इसलिए शुद्ध रह गया। यानि अकर्ता है इसलिए शुद्ध रह गया।

तो किसका कर्ता नहीं है? कि पर का कर्ता नहीं, कर्म का कर्ता नहीं, राग का कर्ता नहीं। यहाँ तक तो ठीक है। यहाँ तक तो... ऐसा ऐसा (हाँ) होता है। यहाँ तक तो ठीक है। मगर वीतराग भाव का कर्ता नहीं है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणाम का, निश्चय मोक्षमार्ग का कर्ता नहीं है, ऐसा (हाँ करने की हिम्मत) नहीं आता। भले ऐसा (हाँ) न आये, लेकिन ऐसा तो (मना) नहीं करना। क्या कहा? समझ न आये तहाँ तक ऐसा (हाँ) नहीं करना। मगर परिणाम का, शुद्ध परिणाम का आत्मा कर्ता नहीं है, ऐसी बात जब कोई बताए तब ऐसा (ना) नहीं करना। और समझे बिना (हाँ) भी नहीं करना। थोड़ी देर ऐसा (स्थिर) रखना। ये क्या बात है? शुद्ध पर्याय! वो तो करने जैसी चीज है। करने जैसी है कि होती है उसको जाननहार है आत्मा?

करनार है कि आत्मा जाननहार है? जाननहार है इसलिए आत्मा बंध-मोक्ष का कर्ता नहीं है। तो कौन करता है? वो बात ज़रा सूक्ष्म है। मगर इतनी बात तो सुनो!

मुमुक्षुः- वो भी बताइए आप।

उत्तरः- अच्छा! बंध-मोक्ष का कर्ता क्यों नहीं है? कि आत्मा है, वो बंध-मोक्ष से भिन्न है। इसलिए आत्मा बंध-मोक्ष का कर्ता नहीं है। उसमें शिष्य का प्रश्न उठा कि बंध-मोक्ष का कर्ता भले आत्मा ना हो मगर बंध-मोक्ष कार्य तो है कि नहीं? परिणाम तो होता है कि नहीं? हाँ, परिणाम तो होता है।

तो शिष्य पूछता है प्रभु! उस परिणाम का कर्ता (कौन है) बताओ हमको। तो हम अकर्ता मान लेंगे। तो आचार्य भगवान ने करुणा करके कह दिया। खुल्लम खुल्ला कर दिया कि पुद्गल कर्म उसका कर्ता है। आत्मा कर्ता नहीं है। बंध में सद्भाव वर्तता है और मोक्ष पर्याय होती है, उसमें अभाव कारण है। अभाव कर्ता है। अभाव से होता है। आत्मा के सद्भाव से मोक्ष नहीं होता। आत्मा तो प्रथम से ही था। आहाहा! जब ज्ञानावर्णादि आठ प्रकार का कर्म का क्षय होता है तो मोक्ष होता है।

आत्मा से होता हो मोक्ष तो सीमंधर भगवान कर देवें। अभी इधर से विनंती करें देवलाली से सब साथ में मिलकर, साथ मिलकर विनंती करें कि हे प्रभु! आपको तो अनंतज्ञान प्रगट हो गया! अनंतवीर्य भी प्रगट हो गया। और तेरहवाँ गुणस्थान आपका है अभी। और आपकी वाणी में ऐसा भी आया, कि तेरहवाँ गुणस्थान वो भी संसार है! तो प्रभु! हमारा अरिहंत भगवान, उनको संसारी भले उपचार से कहा, पर हमको सहन होता नहीं है। हमारी ऐसी एक विनंती है कि आप मोक्ष कर दो। आहाहा! अच्छा काम। क्या? तेरहवें गुणस्थान में अरिहंत हैं ना? और मोक्ष तो गुणस्थानातीत (है)। तो ऐसी अपूर्व दशा आप कर दो। तो वहाँ से उत्तर आता है कि तेरा प्रश्न अविवेक और मूर्खता भरा है।

आत्मा को तू कर्ता मानता है तो तेरा अभिप्राय मेरे तक स्थाप दिया? आहाहा! तू कर्ता तेरे आत्मा को मानता है, तो मुझे क्यों कर्ता स्थाप दिया? अरे! तू भी अकर्ता है और मैं भी अकर्ता हूँ। इसलिए मैं मोक्ष की पर्याय को करनेवाला नहीं हूँ। मैं जाननेवाला हूँ। आहाहा! करनेवाला नहीं। करना मेरे स्वभाव में नहीं है, जानना मेरे स्वभाव में है। तो जब मोक्ष होगा न.. मोक्ष कब होगा वो भी ज्ञान में आ गया। इसलिए आत्मा कर्ता नहीं है। ख्याल करो। क्या कहा?

इधर तेरहवें तीर्थंकर परमात्मा होंगे, आने वाली चौबीसी में। नरेन्द्रभाई! आने वाली चौबीसी में तीर्थंकर भगवान होने वाले..। उसमें पहले तीर्थंकर श्रेणिक महाराज होने वाले हैं, पहले तीर्थंकर। तो जब तेरहवें तीर्थंकर का यहाँ प्रादुर्भाव होगा तब उनका मोक्ष होगा। उनके ज्ञान में आ गया। पहले से ही ज्ञान में आ गया। और पहले से ही ज्ञान में आ गया और आज मोक्ष को करे तो केवलज्ञान खोटा (झूठा) ठहरेगा। और पर्याय का सत् भी खोटा ठहरे। और आत्मा कर्ता बने तो.. आहाहा! जीभ नहीं उठती है। आहाहा!

ऐसा वस्तु का स्वरूप है। कोई तत्व का अभ्यास गहराई से करे नहीं... आहाहा! और निश्चयनय की बात बाहर आये कि ये बंध-मोक्ष का कर्ता कौन है? कि पुद्गल कर्ता है। राग का कर्ता कौन है? कि पुद्गल कर्म उसका कर्ता है। ऐसी निश्चय की बात सुनकर कोई अपने दोष से स्वच्छंदी हो जाओ तो हो जाओ। आहा! मगर तत्व तो ऐसा है। उल्टा गिरे तो उसकी प्रज्ञा से उल्टा गिरता है। आहा! निश्चय की बात सुनकर कोई-कोई निश्चयाभासी भी हो जाता है। नहीं होता ऐसा नहीं है। आहा!

प्रभु! ये शिकार, मांसाहार, दारू, परस्त्रीगमन, व्यभिचार ये सब नरक के भाव हैं। आहा! उसमें मोक्षमार्ग है नहीं। पुण्य भी नहीं है। अकेला पाप है और मनुष्यभव भी मिलनेवाला नहीं है। नरक में सीधा जाएगा। हिंसा, झूठ, चोरी, शिकार, परस्त्रीगमन ऐसे सब सात व्यसन में आता है। आहा! प्रभु! सुन! ये निश्चय की बात सुनकर आत्मा को जान ले। इसलिए आत्मा की बात जानने के लिए है। पाप को करने के लिए (कहता है) कि कर्म करता है, ठीक है। ये सब हिंसा- अहिंसा के भाव कर्म करता है। अच्छा! हमें छूट मिल गई। करो लहर (मौज)! मर जाएगा जल्दी। भाईसाहब का प्रश्न आया था दोपहर में। भाईसाहब! तुम कहते हो कि जो ये सब परिणाम हैं वो पुद्गल करता है, कर्म करता है। तो छूट मिल गई पाप करने के लिए। नहीं मिली। मर जाएगा। वो ऊपर-ऊपर चढ़ाने के लिए बात है। नीचे-नीचे उतरने की बात नहीं है। जो सर्वज्ञ भगवान पुण्य का निषेध करें और पाप करने को कहें, (ऐसा) कभी उनकी वाणी में आता नहीं है। आहाहा! ये कच्चा पारा है। लायक जीव को पचेगा। उसका काम हो जाएगा।

और (ऐसा कहे) ये तो चारित्र का दोष है। ये तो चारित्र का दोष है। सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं! सम्यक् सन्मुख का ठिकाना नहीं, तत्व के निर्णय का ठिकाना नहीं, व्यवहार बुद्धि का भी ठिकाना नहीं। आहाहा! और माने कि ये तो चारित्र का दोष है। भले दोष आये। मर जाएगा। कोई बचानेवाला नहीं है। आहाहा! सँभालकर इस तत्व का अभ्यास करना चाहिए। अध्यात्म-विद्या गंभीर है। ये सिंहनी का दूध है। सिंहनी का दूध समझे ना? मिट्टी में डालो न तो मिट्टी फट जाती है। घड़ा फट जाता है। सिंहनी का दूध तो सोने के पात्र में, यानि कि आत्मार्थी जीव सोने का पात्र है, उसमें भेदज्ञान जमता है। भाईसाहब का प्रश्न था ना, उसका थोड़ा खुलासा किया। आहाहा! स्वच्छंद होने की बात नहीं है। पहले स्वच्छंदता छोड़ दे। आहाहा! स्वच्छंदी का काम इधर नहीं है। आहाहा!

आचार्य भगवान करुणा करके फरमाते हैं, ये भगवान आत्मा शुद्ध है। शुद्ध क्यों है? कि अकर्ता है। **सर्व कारकों के समूह की प्रक्रिया से पार को प्राप्त** कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण ऐसी प्रक्रिया से **पार को प्राप्त जो निर्मल अनुभूति**, अनुभूति मतलब ज्ञानमय भगवान आत्मा

उस अनुभूतिमात्रपने के कारण मैं तो **शुद्ध हूँ**; किसी का कर्ता नहीं हूँ। अरे! भेद को जाननेवाला भी मैं नहीं हूँ। मैं तो अभेद को जाननेवाला हूँ। मगर अभेद होकर अभेद को जाननेवाला हूँ। अभेद को जाननेवाला वो भी हूँ नहीं हूँ। अभेद को जाननेवाला वो भी मैं नहीं हूँ। अभेद होकर अभेद को जाननेवाला, वो आत्मा है।

मुमुक्षुः- अभेद को जाननेवाला कहा, तो भेद पड़ता है।

उत्तरः- भेद पड़ता है। अभेद होकर अभेद जानने में आता है। अभेद होकर अभेद जानने में आता है। उसमें अभेद हो गया, ऐसा भेद भी ख्याल में आता नहीं। वो तो अंदर में गरकाव (मग्न) हो जाता है। डूब जाता है। आहाहा! एयरकंडीशन में बैठ जाता है। अंदर एयरकंडीशन है। गर्मी लगती नहीं है। गर्मी यानि कषाय का, विकल्प का दुःख होता नहीं है। अंदर एयरकंडीशन है। वो एयरकंडीशन बाहर की चीज़ नहीं है। **सर्व कारकों के समूह की प्रक्रिया से पार को प्राप्त जो निर्मल अनुभूति, उस अनुभूतिमात्रपने के कारण (मैं तो) शुद्ध हूँ**; ऐसा यहाँ कहते हैं कि आत्मा आत्मा को जानता है, ऐसा भेद होन से आत्मा का अनुभव होता नहीं है।

अब क्या कहते हैं? आत्मा को आत्मा द्वारा जानना, आत्मा के लिए जानना, इसमें भेद की उत्पत्ति होती है। अब भेद छुड़ाने के लिए, भेद छुड़ाने के लिए (कहा कि) आत्मा आत्मा को जानता है। तो दो आत्मा तो नहीं हैं। आत्मा तो (एक है)। हिम्मतभाई! आत्मा तो एक है। दो आत्मा तो है नहीं। आत्मा तो एक ही है ना! तो आत्मा के द्वारा आत्मा को जानना, आत्मा के द्वारा आत्मा को जानना, तो दो आत्मा हो गए। एक तो रहा नहीं। तो दो आत्मा ख्याल में आने से अनुभूति होती नहीं है। तो अब क्या करना?

आपने बताया कि आत्मा द्वारा आत्मा को जानो। और आप अब कहते हो कि आत्मा को नहीं जानता। तो ये क्या है? नहीं जानता? देखो! **नहीं चेतता, न चेतता हुआ चेतता हूँ** । आहाहा! यह अंतिम कोटि की ऊँची में ऊँची बात है। आहाहा! और शुरूआत की बात है, धर्म की शुरूआत। सम्यग्दर्शन के समय ये विधि होती है और चारित्र में भी वो ही विधि है। **न चेतता हुआ चेतता हूँ** । न जानता हुआ जानता हूँ। जानता हुआ जानता हूँ कि नहीं जानता हुआ जानता हूँ? कि नहीं जानता हुआ जानता हूँ।

तो क्या जानन क्रिया का अभाव हो जाएगा? कि नहीं, जाननक्रिया प्रगट होगी। जानता हुआ जानता हूँ, उसमें तो विकल्प की उत्पत्ति होती थी। ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती थी, अज्ञान की उत्पत्ति होती थी। अब जब '**नहीं**' कहा, तो विकल्प टूट गया। दो आत्मा नहीं रहा। एक आत्मा रह गया। आहा! अभेद को अभेद होकर जानता है आत्मा। अभेद को अभेद से नहीं जानता है, अभेद होकर जानता है। परिणति अंदर में लीन हो जाती है। तो **न चेतता हुआ चेतता हूँ** , ये ऐसा है कि भाषा में तो लिमिट हो जाती है। भाषा में ज़्यादा आ सकता नहीं। जितना आ सके उतने शब्दों से आचार्य महाराज समझाते हैं। उसका जो वाचक है, उसके वाच्य को ख्याल में ले लेवे, उसका काम बन जाए।

ये कहने का आशय क्या है कि 'नहीं' शब्द आपने लगाया। उसमें भेद का विकल्प उत्पन्न होता था, वो विकल्प का नाश करने के लिए 'नहीं' शब्द जोड़ दिया। **न चेतता हुआ चेतता हूँ, न चेतते हुए के द्वारा चेतता हूँ, न चेतते हुए के लिए चेतता हूँ**,आहाहा! **न चेतते हुए से चेतता हूँ, न चेतते हुए में**

चेतता हूँ, न चेतते हुए को चेतता हूँ; आहाहा! आत्मा आत्मा को नहीं जानता। आत्मा आत्मा को जानता नहीं है, उसमें आत्मा जानने में आ जाता है। आत्मा आत्मा को जानता है, उसमें विकल्प (होता है)। 'नहीं' शब्द लगाया तो भेद का विकल्प छूट गया, अनुभूति हो गई। आहाहा! **किन्तु सर्वविशुद्ध चिन्मात्र** (-**चैतन्यमात्र**) **भाव हूँ**। आहाहा!

मैं कौन हूँ? सर्वविशुद्ध चिन्मात्र आत्मा मैं हूँ। ऐसा विकल्प नहीं, ऐसा अंदर में अनुभव आ जाता है। परिणाम हो जाता है अंदर का। ये टीका पूरी हो गई। अब भावार्थ। भावार्थ में पंडितजी बहुत खुलासा करते हैं। अच्छा भावार्थ है। भावार्थ में थोड़ा सरल होता है। टीका में ज़रा हार्ड (कठिन) होता है। उसका डायल्युशन (मृदु बनाकर) करके ज़रा सरल भाषा में समझाते हैं।

भावार्थ:- **प्रज्ञा के द्वारा** , यानि ज्ञान द्वारा, अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा, अंतर्मुख ज्ञान द्वारा, **भिन्न किया गया जो**, राग से भिन्न हूँ, ऐसा भिन्न अनुभव करने में, **जो चेतक वह मैं हूँ** । जो चेतक है सो यह मैं हूँ। जो चार शब्द थे ना? **सो यह मैं हूँ**। वो ही अक्षर रखा। शब्द नहीं, अक्षर। एक अक्षर क्यों रखा? कि आत्मा एक है। एकोअहम्। आत्मा एक है। इसलिए एक अक्षर से ख्याल में आता है। शब्द से ख्याल में आता नहीं। एक, एक को प्रसिद्ध करता है। एक, एक को प्रसिद्ध करता है। **सो यह**, प्रत्यक्ष **मैं हूँ। सो यह मैं हूँ** । चार अक्षर हुए। चतुर्थ गुणस्थान आ जाता है। चतुर्थ गुणस्थान आ जाता है। **सो यह मैं हूँ**। आहाहा!

और शेष भाव , जो रागादि भाव हैं सब संकल्प-विकल्प के जाल हैं, **और शेष भाव मुझसे पर हैं**; मेरे से भिन्न हैं। आहाहा! एक चेतनेवाला वह मैं। और बाकी के रागादि भाव हैं, व्यवहारनय के विषय, वो मेरे से पर हैं, भिन्न हैं। **इसलिए (अभिन्न छह कारकों से)** भिन्न कारक से नहीं। अभिन्न षट्कारक से **मैं ही** 'मैं ही', ये कर्ता। **मैं ही** अर्थात् कर्ता। **मेरे द्वारा ही** ये करण **द्वारा** करण। **मेरे लिए ही**, संप्रदान। मैं आत्मा को जानता हूँ। किसके लिए जानता हूँ? मेरे लिए जानता हूँ। कि समाज के लिए जानता हूँ आत्मा को? धर्म समाज के लिए करना है या अपने लिए? दिखाने के लिए करना है या अनुभव करने के लिए? कोई देखता नहीं है, इसलिए मुझे धर्मी नहीं कहेंगे। आहाहा! तुझे धर्म होने वाला ही नहीं है। क्योंकि दिखाने के लिए तुम धर्म कर रहे हो तो जो दिखता है, वो तो राग दिखता है। और राग तो बंध का कारण है, धर्म कहाँ है उसमें? देह, मन, वाणी की क्रिया वह तो जड़ की है। और तेरी शुभभाव की क्रिया, वह तो आस्रव की क्रिया है। तुझे वह दिखाना है? वह तो धर्म है ही नहीं। जो परिणाम दूसरों को नहीं दिखता, वह धर्म है। (जो) परिणाम दूसरों को दिखता है, वो अधर्म है। विमलाबेन! ख्याल में आया?

जो देखने में आता है, वो धर्म नहीं है। धर्म तो आत्माश्रित सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणाम, वीतरागी परिणाम, अमूर्तिक परिणाम, अरूपी परिणाम है। वो किसी को देखने में आता नहीं है। ये धर्मी, ये धर्मी, ये धर्मी, ये सब गप्पा मारता है। धर्मी है- ऐसी तुझे भ्रांति हो जाती है। क्योंकि बाह्य का त्याग है ना? आहा! भले कठिन पड़े तो पड़े। लेकिन देवलाली में तो खुल्ला सत्य का ढिंढोरा पीट देना चाहिए। देखने में आता है दूसरों को, वो धर्म नहीं है। वो तो मूर्तिक पर्याय दिखने में आती है। सामने वाले के पास इन्द्रियज्ञान है। और इन्द्रियज्ञान का विषय मूर्तिक है। तो मूर्तिक परिणाम को जानने से (कहता है कि) धर्मी है, धर्मी है। अरे! कर्मी को धर्मी जानना, वो पाप है! आहाहा! तो वो तो अरूपी पर्याय है।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का वीतरागी परिणाम, आनंद का परिणाम, वो तो अतीन्द्रियज्ञान से ग्राह्य है। इन्द्रियज्ञान से मालूम होता नहीं है। भाईसाहब! क्या नाम है? भूल गया। गुणवंत! गुणवंतभाई! आहाहा! अरे! कोई अलौकिक बात बाहर आ गई है। ओहोहो! जो श्रीमद् राजचंद्रजी को समयसार सम्यग्दर्शन में निमित्त हुआ, वो सम्यग्दर्शन का कारण है, उसका स्वाध्याय चलता है। जिस शास्त्र से श्रीमद्जी को सम्यग्दर्शन हुआ, उसी शास्त्र से श्रीमद्जी के बाद कईं जीवों को सम्यग्दर्शन हो गया। एक से ज्यादा को। ऐसा अपूर्व शास्त्र है! तो कहते हैं कि **मेरे लिए ही**, धर्म करना किसके लिए? दिखावा करने के लिए? मान-पत्र कोई देवे कि ये धर्मी है, ढिंढोरा पीटे? आहाहा! धर्मी तो गुपचुप काम करते हैं कि हमें कोई देखे नहीं, जाने नहीं तो बहुत अच्छा। बोलो! **मेरे लिए ही**। ये धर्म करना है वो अपने लिए है। किसी के लिए नहीं है। **मेरे लिए ही**, **मुझसे ही** , वो धर्म का परिणाम किसमें से आता है? मेरे में से ही आता है। शास्त्र में से नहीं आता। अपादान कारण अपना आत्मा है। निमित्त में से अपादान आता नहीं है। अलौकिक बात है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जो परिणाम प्रगट होता है, वो अपादान नाम की ध्रुव शक्ति आत्मा में है। तो शक्ति की व्यक्ति का नाम अपादान है।

आत्मा में से वो प्रगट होता है। आनंद आत्मा में से आता है। आनंद बाहर से नहीं आता। **मुझसे ही**, **मुझमें ही**, **मुझे ही** आधार है। आत्मा के आधार से आत्मा का परिणाम होता है। पांच महाव्रत के परिणाम के आधार से आत्मा के परिणाम होते नहीं हैं। नग्नदशा से मुनिदशा नहीं है। नग्नदशा वो मुनिदशा नहीं है। शद्धोपयोग मुनिदशा है। नग्न तो बाहर का लक्षण, अनात्मभूत लक्षण है। आत्मभूत लक्षण नही है । आत्मभूत लक्षण- शुद्धोपयोग, आनंद का भोजन वो मुनि का लक्षण है।

मुझमें ही, **मुझे ही ग्रहण करता हूँ**। आहाहा! मुझे ही मैं तो जानता हूँ। मैं दूसरे को जानता नहीं हूँ। देव, गुरु, शास्त्र को जानता नहीं हूँ। मैं मुझे, मेरे द्वारा, मुझे ही जानता हूँ। जाननहार जानने में आता है। '**ग्रहण करता हूँ**' **अर्थात्** '**चेतता हूँ**' । चेतता हूँ अर्थात् जानता हूँ, देखता हूँ। कारण कि चेतना, जानना, देखना, वो ही आत्मा की एक क्रिया है। एक जानने की क्रिया और एक शुभभाव की क्रिया, ये दो क्रिया आत्मा की नहीं हैं। जानने की क्रिया आत्मा की है और शुभराग की क्रिया कर्म की है। जीव जाननेवाला है, पुद्गल करनेवाला है। आत्मा करनेवाला नहीं है। भाईसाहब! ये बात ऐसी है।

क्योंकि चेतना ही आत्मा की एक क्रिया है। जानना-देखना आत्मा को, आत्मा को जानना-देखना, वो ही आत्मा की एक क्रिया है। आत्मा को जानने से वीतरागभाव सहज प्रगट हो जाता है। **इसलिए मैं चेतता ही हूँ**; **चेतनेवाला ही**, **चेतनेवाले के द्वारा ही**, **चेतनेवाले के लिए ही**, **चेतनेवाले से ही**, **चेतनेवाले में ही**, **चेतनेवाले को ही चेतता हूँ**। जाननेवाले को जानता हूँ, देखनेवाले को देखता हूँ। चेतनेवाले को चेतता हूँ। **अथवा** ...देखो! **अथवा द्रव्यदृष्टि से तो- मुझमें छह कारकों के भेद भी नहीं हैं**। कर्ता, कर्म आदि क्रिया के भेद मेरे में नहीं हैं। क्योंकि मैं निष्क्रिय परमात्मा हूँ, इसलिए मेरे में क्रिया के भेद नहीं हैं। **मैं तो शुद्ध चैतन्यमात्रभाव हूँ। - इसप्रकार प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को ग्रहण करना चाहिए अर्थात् अपने को चेतयिता के रूप में अनुभव करना चाहिए।** अब ये भावार्थ पूरा हो गया। वजन की एक बात अच्छी निकली थी। मीठाभाई चले गए थे। बाद में निकली ना? मीठाभाई चले गए बाद में

निकली। तो एक बात अचानक ऐसी निकली कि मिट्टी करनेवाली है। वो तो बराबर ना? गुज़राती में समझ में आ गया? मिट्टी करनेवाली है। अज्ञानी माननेवाला है और ज्ञानी जाननेवाला है। क्या कहा? मिट्टी करनेवाली है। अज्ञानी कहता है कि मैं करनेवाला हूँ, ऐसा मानता है। माननेवाला है। मिट्टी घड़े को करती है। कुंभार की हाज़री है, तो कुंभार की दृष्टि मिट्टी पर है। तो वो कहता है कि मैंने घड़ा बनाया। अज्ञानी माननेवाला है। करनेवाला नहीं है। करनेवाली तो मिट्टी है। घट को करनेवाली तो मिट्टी है। लेकिन अज्ञानी माननेवाला है। माननेवाला यानि करनेवाला नहीं। घड़े को करनेवाला अज्ञानी नहीं है। एक-एक बात रहस्यवाली है। मिट्टी करनेवाली है। अज्ञानी माननेवाला है कि मैंने घड़ा किया, ऐसा मानता है। घड़े को करनेवाला अज्ञानी नहीं है। क्योंकि जो मिट्टी करनेवाली है, उसको आत्मा भी करे और मिट्टी भी करे, तो एक घट की पर्याय के दो कर्ता होते नहीं हैं। वो अज्ञानी है।

सर्वज्ञ भगवान के मत से बाहर है। मानता है कि मैं घड़े की पर्याय को करनेवाला हूँ। ऐसी मान्यता है। वो मान्यता तो उसके स्वचतुष्टय में रह गई। उसकी मान्यता उसकी (घड़े की) क्रिया में जाती नहीं है। करनेवाली तो मिट्टी है। मिट्टी करनेवाली है, अज्ञानी माननेवाला है। पटेलभाई! अज्ञानी ऐसा माननेवाला है कि मैं करता हूँ। धीरूभाई! ये मकान का काम, बिल्डिंग का काम मैंने किया! हराम आपने किया हो तो! हराम है हों! करना हराम है! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर सकता नहीं है। मिट्टी करनेवाली है, अज्ञानी माननेवाला है कि मैं घड़ा बनाता हूँ। और ज्ञानी जाननेवाला है। अथवा जो जाननेवाला है, वो ज्ञानी होता है और मानता है, वो अज्ञानी रह जाता है। संसार चार गति में भटकता है। ये तो द्रष्टांत नोकर्म का दिया। मिट्टी नोकर्म है बाहर का पदार्थ.. अब अपने को सिद्धांत में उतारनी है वो बात। हिंदी में चलता है, ठीक है? अब सिद्धांत में उतारना है।

कि कर्म करनेवाला है, अज्ञानी माननेवाला है, ज्ञानी जाननेवाला है। मिट्टी की जगह पर कर्म रखा। कर्म यानि द्रव्यकर्म। दर्शनमोह, चारित्रमोह दो प्रकार के कर्म हैं। 'कर्म अनन्त प्रकार के, उसमें मुख्य आठ। उसमें मुख्य मोहनीय, नशाय कहूँ वो पाठ।।' श्रीमद्जी का ये वाक्य है। आठ प्रकार के कर्म हैं। ऐसा कर्म करनेवाला है। कर्म यानि द्रव्यकर्म। रागादि को करनेवाला जड़कर्म है। जैसे मिट्टी से घड़े की उत्पत्ति होती है, ऐसे जड़कर्म से राग की उत्पत्ति होती है। ये पूजा का भाव होता है ना? वो भक्ति का राग होता है ना? उसको करनेवाला कर्म है। जीव करनेवाला नहीं है। हाय! हाय! हमारी पूजा चली जाएगी, भक्ति चली जाएगी, सब चला जाएगा। व्यवहार का लोप हो जाएगा। अरे! व्यवहार का लोप होने से निश्चय की प्राप्ति हो जाएगी। परमात्मा हो जाएगा। सुन तो सही तू! आहा!

कर्म करनेवाला है, अज्ञानी माननेवाला है और ज्ञानी जाननेवाला है। कर्म यानि द्रव्यकर्म। वो राग की रचना करता है। व्याप्य-व्यापक संबंध तत्स्वरूप में है, कर्ता-कर्म संबंध तत्स्वरूप में है। अनंतकाल से मान रखा है कि राग को करनेवाला मैं हूँ। राग को करनेवाला आत्मा नहीं। राग को करनेवाला कर्म है और माननेवाला अज्ञानी है। करनेवाला नहीं है। राग को करनेवाला हो, तो तो सम्यग्दृष्टि हो जाए। राग का करनेवाला दूसरा है, मानता है कि मैं करनेवाला हूँ, इसलिए मिथ्यादृष्टि है।

तो अब कर्ताबुद्धि छोड़ दे। मैं तो जाननेवाला हूँ। राग को करनेवाला कर्म है। रागी तो पुद्गल है।

जवाहरभाई! रागी तो पुद्गल है। रागी पुद्गल है तो राग को कौन करे? रागी जो पुद्गल हो तो राग को कौन करे? जीव करे कि पुद्गल?

मुमुक्षुः- पुद्गल करता है।

भाईः- अच्छा! जीव करता नहीं। कब?

मुमुक्षुः- कभी नहीं।

भाईः- सम्यग्ज्ञान होने के बाद?

मुमुक्षुः- कभी नहीं।

भाईः- अज्ञानी है वहाँ तक तो राग को करता है कि नहीं?

मुमुक्षुः- राग को करता ही नहीं।

भाईः- करता नहीं है, (किन्तु) कर्ता मानता है। कर्ता तो हो सकता नहीं है। जो कर्ता हो तो जड़ हो जाये। तो पांच द्रव्य हो जाएँ। छह द्रव्य रहते नहीं हैं। आहाहा! मानता है अज्ञानी। मानता है कि मैं राग को करनेवाला हूँ। करनेवाला दूसरा होने पर भी दृष्टि द्रव्य पर नहीं है, संयोग पर दृष्टि है। स्वभाव पर दृष्टि नहीं है, पर्याय पर दृष्टि है, ज्ञायक पर दृष्टि नहीं है, तहाँ तक वो मानता है कि राग को करनेवाला मैं हूँ। वो तो अज्ञान है। उसमें कुछ है नहीं।

और ज्ञानी का योग मिले कि कर्म करनेवाला है, ज्ञानी जाननेवाला है। अरे! मैं तो जाननहार हूँ। मैं करनेवाला नहीं हूँ। तो दृष्टि पर के ऊपर से हटकर अंदर में आ जाती है। मैं तो चेतनेवाला हूँ, मैं तो देखनेवाला, जाननेवाला हूँ। जाननेवाले को जानता हूँ। जो जानने में आता है उसको नहीं जानता हूँ। राग जानने में आ जाता है, राग को जानता नहीं हूँ। मैं तो जाननेवाले को जानता हूँ, तो राग ऊपर से दृष्टि हटकर आत्मा में आ जाती है और साक्षात् आत्मा का दर्शन होता है, अनुभव हो जाता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन। वो धर्म की पहली सीढ़ी है। समय हो गया। बोलो परम उपकारी श्री सद्गुरु देव की जय हो!!!